संवाद

सशस्त्र, सशक्त और सशक्तिकरण
-इरोम शर्मिला चानू

सुनीता ठाकुर

मणिपुर का मालोम क्षेत्र, 2 नवंबर, 2000 की सुबह, चौराहे पर गाड़ी का इंतज़ार कर रहे निहत्थे लोगों पर सशस्त्र बलों के जवान अंधाधुंध गोलीबारी करते हुए निकल जाते हैं। लोगों को कुछ समझ नहीं आता, उनकी निगाहें फर्राटे से निकल गई गाड़ियों के उड़ते धुंए का पीछा करती रह जाती हैं। सामने सड़क पर छटपटाते, बेजान शरीरों को देख हर किसी की सांस थम जाती है। पूरे क्षेत्र में सेना के इस कारनामे पर विद्रोह के सुर फुसफुसाने लगते हैं। दस साल पहले मणिपुर में घटी यह कोई पहली घटना नहीं है जिसमें इस तरह बेगुनाहों को मार गिराया गया हो।

अहिंसक आंदोलन व दृढ़ इच्छाशक्ति का प्रतीक शर्मिला

पूरे पूर्वोत्तर की तरह मणिपुर में भी *आर्म्ड फोर्सेस स्पेशल पावर्स एक्ट* लगाया गया है। सरकार इस क्षेत्र में उग्रवाद को रोकने और शांति बहाल करने के लिए प्रतिबद्ध है। उनकी शिकायतों और समस्याओं पर बात किए बिना स्वदेशी सरकार, दमन की अंग्रेज़ी नीति अपनाकर गुलामी की त्रासदी बनाए है। लोगों का दुख इस बात से ज़्यादा है कि अपनी ही सरकार अपने ही देश की जनता की पुकार सुनना नहीं चाहती।

आम जनता पर दोतरफ़ा मार पड़ रही है। उग्रवादी अपनी मांगों को मनवाने के लिए आम जनता को शिकार बनाते हैं और सेना उग्रवादियों को सबक सिखाने के लिए किसी को भी अपना निशाना बना लेती है। सरकार विरोधी और सरकार समर्थित इन 'उग्र' हमलों की शिकार जनता अपनी ही ज़र-ज़मीन से बेदखल हो जाने और सुरक्षित जीवन की तलाश में क्षेत्र से पलायन करने पर मजबूर है। जनता, उग्रवाद और सेना-दो पाटों के बीच धुन की तरह पिस रही है। वहां लोग दमित हैं, शोषित हैं और अपमानित हैं। आज़ाद देश की सरकार के नाम पर छली जाती अपनी स्वाजीयता की त्रासदी को झेलने पर मजबूर।

अगर समस्या की जड़ में जाएं तो शर्मिला के साथ-साथ अधिकांश समाज सेवी मणिपुर सहित पूरे पूर्वोत्तर में लागू *आर्म्ड फोर्सेस स्पेशल पावर्स एक्ट* को मूल कारण बताते हैं। यह अधिनियम पहली बार अंग्रेज़ों ने 1942 में भारत में लागू किया था। इस कानून द्वारा तत्कालीन जनद्रोह को दबाने के लिए सशस्त्र बलों को निरंकुश शक्तियां प्रदान की गई थीं। अंग्रेज़ चले गए, किंतु अंग्रेज़ी कानून के बहुत से प्रावधानों की भांति यह कानून सरकार के हाथों में रह गया। भारतीय संसद ने इस अधिनियम को 1990 में पास करके जम्मू-कश्मीर में लागू किया था। इसके बाद यह 1955 में असम और मणिपुर में इसे लागू किया गया। तब से आज तक तथाकथित 'डिस्टर्ब्ड एरियाज़' में शांति बहाली के नाम पर सरकार द्वारा यह कानून कई क्षेत्रों में लागू कर दिया गया है। यह कानून जर्मनी के फांसीवादी कानून की याद दिलाता है जो कानून एवं प्रशासन की आढ़ में नस्लवादी हिंसा का प्रतीक भर था।

मगर नागरिक और मानवाधिकारों की दृष्टि से हमारे देश में बहुत से दोहराव और कानूनी टकराव नज़र आते हैं। संविधान का अनुच्छेद 21 प्रावधान करता है कि "जीवन या निजी स्वतंत्रता पर हमला नहीं किया जा सकता।" मगर यह कानून सशस्त्र बलों को आम जनता के विरूद्ध वही दमनकारी निरंकुश ताकत देता है। 1980-2000 तक 157 बेगुनाहों की हत्या इस कानून की आढ़ में कर दी गई है, 18 जबरन गुमशुदगी के केस दर्ज किए गए हैं, 1974-2004 तक यहां 18 बलात्कार के दर्ज केस हैं। 83 लोगों के साथ यातना के मामले दर्ज हुए हैं, इन मामलों में सबूत मौजूद हैं, जबकि असंख्य लापता हाल मामले ऐसे हैं, जिन पर कोई सुनवाई या रिकॉर्ड नहीं मिलता।

2 नवंबर को, मालोम चौक पर 10 बेगुनाहों की हत्या ने हर मणिपुर निवासी को भीतर तक झकझोर दिया। उस समय शर्मिला के साथ-साथ मायरा पायबी और अपुंबालुप जैसे बहुत से संगठन और नेटवर्क उठ खड़े हुए थे। इस कानून के विरोध में इरोम शर्मिला चानू की भूख हड़ताल को ग्यारह साल पूरे हो रहे हैं।

परिवार में सबसे छोटी शर्मिला ने इंटर तक शिक्षा प्राप्त की और सामाजिक सरोकारों के प्रति अपने रुझान के तहत वे *ह्यूमन राइट्स अलर्ट* में वॉलंटीयर के रूप में जुड़ीं। एक माह तक प्रदेश की अनेक समस्याओं और मद्दों पर उन्होंने सक्रिय रूप से काम किया। शर्मिला द्वारा भूख हड़ताल का निर्णय अपनी ज़मीन के दर्द, और जन संस्कृति व समाज पर पूर्वोत्तर में लागू *आर्म्ड फोर्सेस स्पेशल पावर्स एक्ट* के दुष्प्रभाव की गहन समझ से जन्मा है। उनकी बस एक ही शर्त है, मणिपुर में लागू *आर्म्ड फोर्सेस स्पेशल पावर्स एक्ट* को हटाया जाए। शांति बहाली और उग्रवाद खत्म करने के नाम पर सेना के अत्याचार बंद किए जाएं।

शर्मिला की भूख हड़ताल तुड़वाने के लिए उन्हें कितनी ही बार जेल में नज़रबंद किया गया है, उन पर धारा 309 के तहत आत्महत्या के प्रयास का मामला दर्ज कर दिया जाता है। वे बंदी हैं, आज़ाद होते हुए भी आज़ाद नहीं हैं, कहीं अपनी मर्ज़ी से आ-जा नहीं सकतीं, किसी से मिल नहीं सकतीं। एक महिला जो निहायत शांतिपूर्ण तरीके से अपनी बात सरकार तक पहुंचाना चाहती है, उससे इस देश की सरकार और राजनीति को जाने क्या खतरा महसूस होता है कि जेल में जबरन नज़रबंद किये जाने, नाक में लगाई गई नली के मार्फ़त तरल पदार्थ दिये जाने, एकांत कारावास जैसे अनेक अमानवीय प्रतिबंध उन पर लगाए जाते रहे हैं। *मानवाधिकार आयोग, युनेस्को* ने इसे मानवाधिकार हनन का मामला बताकर सरकार की निंदा की है। ईरान की नोबेल शांति पुरस्कार विजेता, शिरीन इबादी कहती हैं- "सेना, लोगों के बचाव व सुरक्षा के लिए होती है, उसका जनता के ख़िलाफ़ कतई इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए।" मगर यह बात हमारी सरकार को समझ नहीं आती।

शर्मिला के अथक उपवास से देश की राजनीति बार-बार गरमाती रही है, लेकिन आज हमारे सामने बहुत से सवाल खड़े हैं। भारतीय राजनीति में सत्य-अहिंसा और बंदूक-बम की राजनीति के बीच सदा से संघर्ष रहा है। बंदूक की राजनीति लोगों में डर और आतंक पैदा करती है, लोग जीने के लिए उसके समक्ष हर समझौते को तैयार हो जाते हैं। विरोध करना चाहते हुए भी वे अपने असंतोष को दबाकर दूसरों को भी सब सहन करने के लिए मनाते, उकसाते और विवश करते हैं। इसीलिए शर्मिला जैसा कोई एक आम व्यक्ति जब सच्चाई और अहिंसा के लिए अपनी आवाज़ बुलंद करता है, तब वह आवाज़ इसी तरह कहीं अकेली नज़र आने लगती है। मुझे गांधी जी की याद आती है, वह एक समय था जब पूरा देश उनके उपवास की धमकी मात्र से थर्रा जाता था, सरकार की नींद उड़ जाती थी। मगर आज ग्यारह साल से उपवास पर बैठी शर्मिला के संघर्ष को जन चेतना के जिस सैलाब का इंतज़ार है, वह न जाने किस स्वार्थ, भय और हताशा के हिमखंडों में दफ़्न है। पहले भारतीय जन चेतना विदेशी हुकूमत के ख़िलाफ़ हुंकार भरती थी, मगर वही जनचेतना अपनी ही हुकूमत के ख़िलाफ़ निष्क्रिय, हताश और बेजान नज़र आती है। ऐसे में शर्मिला की जन-हठ का क्या होगा?

मणिपुर समस्या के बहुत से पक्ष हैं, जिन्हें समझे बिना बात अधूरी रह जाएगी- *बेरोज़गारी का बढ़ना*- मणिपुर में किसी समय में धान की खेती बहुतायत से होती थी, इतनी कि वह धान का निर्यातक राज्य था, किंतु आज़ादी के बाद से

लगातार यहां के हालात बदतर होते गए हैं, आज यह राज्य अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए धान व कपास का आयात करता है। मणिपुर की जनता उपेक्षा का शिकार है। देश की विकास नीतियों में भौगोलिक साम्य का अभाव है। उग्रवाद के बढ़ने के साथ-साथ यहां लगातार लोगों की रोजी-रोटी पर असर पड़ा है। राज्य से युवा शक्ति का पलायन, सशस्त्र बलों के अत्याचार और सरकार द्वारा विकास परियोजनाओं के नाम पर लोगों की ज़मीने हड़पे जाने से खेती में आत्मनिर्भर यह राज्य बेरोज़गारी का शिकार होकर रह गया है। खनिज तत्वों के भंडार इस राज्य के संसाधनों को दोहन जिस गति से हो रहा है, उतनी गंभीरता से यहां के लोगों की ज़रूरतों को नकारा जा रहा है।

गुज़र बसर के साथ अस्मिता का प्रश्न- मणिपुर अनेकों जनजातियों और समुदायों का प्रदेश है, विकास के नाम पर पैदा किए गए ज़मीनी संकट से लोगों के रोज़गार ही नहीं उनकी अस्मिता और संस्कृति का भी संकट उत्पन्न हो गया है। मणिपुर के जाने-माने समाजकर्मी नोबोकिशोर कहते हैं- "शोषण को और तेज़ करने के लिए भारतीय राज्य मणिपुर पर कब्ज़ा बनाए हुए हैं।... लोगों की भूमि व संसाधनों पर कब्ज़ा जमाया जा रहा है- बंदूक के बल पर लोगों को जबरन चुप कराया जा रहा है।"

केंद्र शासन के इस भेदभावपूर्ण नीतियों और रवैये के प्रति मणिपुर में लगातार जन-द्रोह बढ़ता गया है जिसे आज उग्रवाद का नाम दिया जा रहा है। शर्मिला कहती हैं- "मेरे पास न तो आर्थिक साधन हैं और न हीं राजनीतिक सत्ता है। मेरे पास केवल मेरा शरीर है।" लिहाज़ा वे अपना शरीर होम करके मणिपुर के असंतुलित विकास और उससे उत्पन्न जन असंतोष की ओर दुनिया का ध्यान खींच रही हैं।

मणिपुर के हालातों पर सरकार और राजनेताओं का कोई सरोकार नज़र न आने के साथ-साथ क्षेत्रीय उदासीनता और जनचेतना का अभाव साफ़ नज़र आता है। अखंड भारत की जनता में भारतीयता की एकजुट सोच नज़र नहीं आती। इस देश में सशस्त्र सेनाओं के अत्याचार के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलंद करने वाली शर्मिला अलग-थलग क्यों पड़ जाती हैं? क्या भारतीय जनता अपनी ही सुरक्षा के प्रति उदासीन हो चुकी है? क्या हम सुरक्षा की गारंटी के नाम पर हर अत्याचार को लाज़िमी मानने लगे हैं?

अगर इतिहास पर नज़र डालें तो देश में जहां-जहां *आर्म्ड फोर्सेस स्पेशल पावर्स एक्ट* लागू किया गया है, वहां-वहां इस तरह के जन असंतोष और विद्रोह जन्मे हैं। तो क्या यह किसी लोकतांत्रिक सरकार के लिए विचार का एक विषय नहीं होना चाहिए कि सुरक्षा और शांति बहाली के नाम पर सशस्त्र बल जनता के अधिकारों का हनन और लोकतंत्र के रक्षक संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन न करें? क्या निरंकुशता से मुक्त होकर सुरक्षा और शांति बहाली का कोई रास्ता हम नहीं सुझा सकते? क्या इस तरह के अधिनियमों के द्वारा अततः हम सैन्यवाद के समक्ष घुटने तो नहीं टेक रहे? क्या सैन्य निरंकुशता, जन-खुशहाली और संतोष से बढ़कर हो सकती है? क्या राष्ट्र की सरुक्षा, एकता और अखंडता महज सैनिक दुराग्रह की बिसात पर कायम की जा सकती है? क्या दमन की राजनीति देश के लोकतांत्रिक और मानववादी चेहरे का गौरव बनाए रख सकती है? और सबसे बड़ी बात क्या लोकतंत्र की नींव स्वरूप जनचेतना को बहुत लंबे समय तक दबाया जा सकता है?

देश में लगातार बढ़ते सशस्त्र विद्रोहों की जड़ को समझने बिना इन समस्याओं का हल नहीं निकाला जा सकता। ये सशस्त्र विद्रोह दबाए जा सकते हैं पर खत्म नहीं किए जा सकते, क्योंकि उन्हें जन असंतोष का समर्थन प्राप्त है। वही जन असंतोष जो सरकारी ताकत के समक्ष प्राण रक्षा के लिए मौन तो नज़र आता है, पर अपनी मुक्ति का उपाय भी चाहता है। जब-जब किसी देश की शासन सत्ता, उसकी प्रशासनिक नीतियों, राजनीति जनेच्छा से दूर होती है, तब-तब सशस्त्र विद्रोह जन्म लेते हैं, और राष्ट्र-सत्ता, अखंडता और एकता को खतरा पैदा होता है। ज़रूरत इस बात की है कि देश की राजनीति निजी स्वार्थ, संकीर्ण सोच और हठधर्मिता से ऊपर उठकर उन मानवीय मूल्यों, आदर्शों और कर्तव्यों का पाठ दोहराए, जो संविधान द्वारा रचे गए हैं। तब जाकर शायद किसी शर्मिला को यों सालों भूख-हड़ताल में होम न होना पड़ेगा।

सुनीता ठाकुर *जागोरी में कार्यरत हैं।*